

तन्त्र का आविर्भाव और विकास

अनादिकाल से गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा आगत ग्रंथ-सन्दर्भ 'आगम' शास्त्र है। आड् उपसर्गक गम् धातु से आगम शब्द निष्पत्र है। आगमशास्त्र से तन्त्र शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। जिस तरह गुरु-शिष्य परम्परा से आगत आगम है, उसी प्रकार वेद भी अनादि काल से गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त है। गुरुमुख से शिष्यों द्वारा सुने जाने के कारण जिस प्रकार वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है, उसी प्रकार अवण द्वारा उपलब्ध होने के कारण आगम भी श्रुति कहलाते हैं। हारीत धर्मशास्त्र में कहा गया है कि 'धर्म को श्रुतियाँ प्रमाणित करती हैं और श्रुतियाँ वैदिकी और तान्त्रिकी भेद से दो प्रकार की हैं।' यही कारण है कि तन्त्र को भी श्रुति कहा जाता है।

तन्त्र का आविर्भाव

कणाद ने धर्म की परिमापा बतलाते हुये कहा है कि "जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है वह धर्म है।"^२ जिस प्रकार वेदों में प्रवृत्ति और निवृत्ति-परक दो प्रकार के धर्म का व्याख्यान मिलता है, उसी प्रकार का धर्म व्याख्यान तन्त्रों में भी मिलता है। शैवागम में प्रवृत्ति-परक और निवृत्ति-परक धर्म को पशु-धर्म और पति-धर्म कहा गया है। यहीं दोनों प्रकार के धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस के लिये भुक्ति और मुक्ति नामान्तर से तन्त्रशास्त्र में व्यवहृत हुए हैं। शैव-सिद्धान्त परिमापा में गूर्धमट्ट ने कहा है कि "वेद और आगम में परस्पर कोई विरोध नहीं है।"^३ किन्तु व्याकहारिक दृष्टि से धर्म साधन यार्ग में जो लोग वेद और आगम में भेद देखते हैं, वस्तुतः उनका यह हजिकोरा वस्तु तत्त्व विवेक रहित है।

१. अथातो धर्मं व्याख्यास्थामः । श्रुतिप्रमाणको धर्मः । श्रुतिश्च द्विविधा—
वैदिकीतान्त्रिकीय ।

२. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः ।

३. नहि वेदागमयोरत्यन्तं विरोधं पश्यामः । परकतृत्वाविशेषात् ।

तन्त्र सिद्धान्त और साधना

२२

शैव, वैष्णव, शाक्त, बीद्र और जैन आदि भेद से आगम भिन्न-भिन्न हैं और किर उनके भी अनेक भेद-प्रभेद हैं। वैष्णव आगम वैखानस और पाञ्चरात्र भेद से दो प्रकार के मिलते हैं। वैखानस आगम का उपदेश विश्वनस ने मृगु, अत्रि, मरीच्यादि कृषियों को देकर उनके द्वारा प्रचारित कराया। पाञ्चरात्र आगम के दो भेद हैं—दिव्य कृषियों को देकर उनके द्वारा प्रचारित कराया। पाञ्चरात्र आगम के दो भेद हैं—दिव्य आगम और अदिव्य। भगवान् नारायण द्वारा उपदिष्ट पौष्ट्र-जयादि संहिता दिव्य आगम है। अदिव्य आगम दो प्रकार के माने गये हैं। एक तो वह जो कृषिप्रोक्त है और दूसरे वे जो आचार्यों द्वारा कहे गये हैं। वैष्णव आगमों के सभी भेद-प्रभेदों की संख्या मिलकर दो सौ पचास तक है।

शैवागम—शैव, पाशुपत, सोम, लाकुल भेद से चार प्रकार के हैं। फिर यही वाम, दक्षिण और सिद्धान्त भेद से तीन भागों में विभक्त हो जाते हैं। वामभेद के अन्तर्गत कापाल, कालामुख, अधोर आदि प्रभेद है। कश्मीर शैवागम 'त्रिक' इस अपरनाम से दक्षिण भेद के अन्तर्गत परिणामित हुआ है और सिद्धान्त भेद के अंतर्गत कामिकादि अट्टाइस शैवागम आते हैं। अत्यन्त आमभूत होकर परमशिव ने इन आगमों का उपदेश किया है, इसलिये वह 'सिद्धान्त' कहे जाते हैं।

अट्टाइस सिद्धान्त शैवागमों में से शिव के दस और रुद्र के अठारह हैं। सदा-शिवस्वरूप भगवान् शिव ने लोकों के अज्ञान को दूर कर उन्हें तत्त्व-ज्ञान कराने के लिये सर्वप्रथम प्रणाव आदि दण शिवों को उपदेश दिया; तो कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीपत, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान और सुप्रभेद ये दस शिवभेद प्रसिद्ध हुए। इसके बाद अनादि रुद्र ने अठारह रुद्रों को जव उपदेश दिया; तो विजय, निःष्वास, स्वायम्भुव, अनल, बीर, रौरव, मकुट, विमल, चन्द्रज्ञान, मुखबिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, शर्वोक्त, पारमेश्वर, किरण और वातूल ये अठारह रोद्रभेद प्रसिद्ध हुए।

मृगेन्द्र आगम के विद्यापाद अध्याय में लिखा है कि "सृष्टि के प्रारम्भ में परमशिव ने अपने मन्त्रमय पाँच मुखों से विमल ज्ञान स्वरूप दित्यागमों को अभिव्यक्त किया।"^१

भगवान् सदाशिव के मन्त्रमय पाँच मुख ये हैं—सद्योजात, वामदेव, अधोर, तत्पुरुष और ईशान। इन्हीं पञ्च स्रोतों से विमल ज्ञान प्रस्फुटित हुआ है। इसका रहस्य इस प्रकार समझा जा सकता है :

१. सृष्टिकाले महेशानः पुरुषार्थं प्रसिद्धये।

विधत्ते विमलं ज्ञानं पञ्चस्रोतोऽभिलक्षितम् ॥

तन्त्र का आविर्भाव और विकास

परमकारणभूत व्योमाकार शिवतत्व में सभी शब्दों के परमकारणभूत अत्यन्त मूद्धमनाद अव्यक्त रूप से विचमान रहता है। यह सूक्ष्मनाद जब अव्यक्त अवस्था में रहता है, तब इसे परनाद कहा जाता है और जब परनाद अभिव्यक्त होता है तो वह स्फोट कहा जाता है। शिव तत्त्व में जब शक्तितत्व का प्राविभाग होता है, उसी समय स्फोट का भी आविर्भाव होता है। स्फोट सर्वशब्दात्मक है, अब वा यही वर्ण समय स्फोट का भी आविर्भाव होता है। स्फोट सदाशिवरूप के आविर्भाव के समय स्थूल रूप को प्राप्त कर भूत स्फोट शक्तितत्व से सदाशिवरूप के आविर्भाव के समय स्थूल रूप को प्राप्त कर भूत स्फोट शक्तितत्व से व्यवहृत अभिव्यक्त और अनुमववेय होता है। यह अवस्था 'अपरनाद' इस नाम से व्यवहृत अभिव्यक्त और अनुमववेय होता है। इस सदाशिवरूप के साथ आविर्भूतवर्ण समूहात्मक अक्षर विन्दु अपरविन्दु होती है। अपरविन्दु के सान्निद्धय से ही ईश्वरतत्त्वाश्रयी मूढ़म वर्ण नाम से व्यवहृत होता है। अपरविन्दु के सान्निद्धय से ही ईश्वरतत्त्वाश्रयी मूढ़म वर्ण और शुद्ध विद्या तत्त्वाश्रयी स्थूल आविर्भूत हुए। इस प्रकार शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या नाम के कार्यतत्व चतुष्टय के आधित चार प्रकार के शब्द क्षमणः और शुद्धविद्या नाम के कार्यतत्व चतुष्टय के आधित चार प्रकार के शब्द क्षमणः परा, पर्यन्ती, मध्यमा और तैम्बरी अभिव्यक्त होकर अर्थवाचक बनते हैं।

आगम शिद्धान्त के अनुसार परनाद का अभिव्यक्ति ही स्फोट है जो वह वर्ण-हूप है; किन्तु वैयाकरण स्फोट को वर्ण से अतिरिक्त मानते हैं। शिद्धान्त के अनुसार स्फोट वर्ण से अतिरिक्त नहीं है। शंकराचार्य ने ब्रह्ममूल भाष्य में शब्द को ही वर्ण माना है।^१ रामकण्ठाचार्य ने नादकारिका में वर्ण को ही स्फोट माना है।^२ ही वर्ण माना है। उस प्रणाव का ही विस्तार अकार से वह स्फोट ही मूलवर्णभूत प्रणाव (अ) है और उस प्रणाव का ही विस्तार अकार से लकार पर्यन्त पचास वर्ण है। प्रमाणप्रमातृप्रभेयरूप विश्वप्रपञ्च विलास में प्रवृत्त सृष्टि रचना के लिये उद्यत परमशिव की इच्छाशक्ति से संक्षोभित विन्दु ही प्रणाव (अ) कहा जाता है। प्रणाव द्वारा प्रसृत ककरादिसे लकारान्त पर्यन्त वर्णों के साथ सोलह कहा जाता है। व्यंजन वर्णों और अनुस्वार वर्णों के संयोग से स्वर वर्णों का धात्मवत् सम्बन्ध है। व्यंजन वर्णों और अनुस्वार वर्णों के संयोग से 'पद' की उत्पत्ति होती है और पदों के समुदाय से मन्त्रों की उत्पत्ति होती है। ऐसे वर्णों, पदों और मन्त्रों से 'तन्त्र' का आविर्भाव हुआ है—इस अर्थ से विस्तृत व्याख्या आयी हारा की गई है :-

नादरूपतया पूर्व शिवेनाविष्टुतः पून ।

सदाशिवादिरुपेण तेनैवासौ पृथक्-पृथक् ॥

कामिकादिप्रभेदेन शिष्येभ्यः संप्रकाशितः ।

अष्टाविंशति संख्योऽस्मौ सिद्धान्त इति संजितः ॥

१. वर्ण एव च शब्दः

२. वर्ण एव स्फोटः

तात्त्विक विकास-क्रम

तात्त्विक विकास का मूल आधार तात्त्विक संस्कृति है। तात्त्विक संस्कृति पेसा कहने से यह भग नहीं होना चाहिए कि वैदिक-संस्कृति से भिन्न कोई तात्त्विक संस्कृति नहीं है। वस्तुतः वैद, विशेषतया अथर्ववेद ही समस्त तात्त्विक प्रक्रिया वितान वैभव का बीज है। अनेक प्रकार के अंगों की संहति को तंत्र कहा जाता है। कर्कचार्य ने 'कर्मणां युगपदभावस्तत्त्वम्' कह कर स्पष्ट घोषित किया है कि कर्मों के युगपद भाव को तंत्र कहते हैं। यजुर्वेद के 'तत्त्वायिणो नमः' की निःक्ति करते हुए भाष्यकार महीधर ने लिखा है कि "एषवै तंत्रायी य एष तपति, एष हीमाल्लोकस्तत्त्व-गिवानुमन्तरति।" तात्पर्य यह कि आदित्य (मूर्ति) तत्त्वायी है, वही तात्त्विक ज्ञान का प्रयासक है। पठनकाम शिव आदित्य ही है—इसमें कोई विवाद नहीं है। तंत्रशास्त्र शिव के मुख से नियंत्र होकर शान्क में समा गया। "आगतः शिवब्रवत्रोभ्यो गतश्य गिरिजानने।"

जितने भी आर्थरण कर्म है, वे सब पाकयज्ञ कहे जाते हैं। आज्यतत्त्व और पाकतत्त्व—इन दो भेदों में आर्थरण कर्म विभक्त है। हविष्य प्रधान कर्म आज्य-तत्त्व कहलाते हैं और चरुपुरोडोश प्रधान कर्म पाकतत्त्व कहलाते हैं। यद्यपि यहाँ पर तत्त्व शब्द से आज्य प्रधानता और पाक प्रधानता ही अभीष्ट है, किन्तु अथर्ववेद के कीशिक सूत्र के 'नदवि होमे न हस्तहोमे न पूर्ण होमे तत्त्वं क्रियेत्येके' की टीका करते हुए दारिद्र्ण केशव ने स्पष्ट कर दिया है कि तात्त्विक वैदिक सभी अनुष्ठान कर्मों में स्रुत से आज्यादृति देनी चाहिए, किन्तु कहीं-कहीं तात्त्विक होम हाथ से भी किया जाता है :—

'गवेत्र यजुवहोमे नित्यं तत्त्वं हस्त होमे विकल्पेन तत्त्वम्।' (कं० ६)

इसके अतिरिक्त कीशिक सूत्र में और भी ऐसे अनेकानेक प्रमाण है, जिनसे तत्त्व-संस्कृति और तात्त्विक कर्मों का बोध होता है। अथर्ववेद में कृत्यादूपण के निवारण के लिए 'निशाकर्म' नाम की तात्त्विक क्रिया की जाती है :—

'येषु निशाकर्मसु तत्त्वं तेष्वयं धमः।' (कण्डिका ८)

सांग्रामिकों के कर्म के लिए तात्त्विक क्रिया विधान का वर्णन अथर्ववेद में है :—

'सांग्रामिकाणां कर्मणां तत्त्वं वक्ष्यामः' (कीशिक सूत्र मं० १४)

व्याधियों, आधियों, भूतावेषों के निवारण के लिए अथर्ववेद में मणि-वस्त्रत का उत्तर किया जाता है। मणि का तात्पर्य यहीं नीलम, पद्मा, पुस्तराज नहीं है। मणि अथर्ववेदीय पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ वंश (ताबीज) होता है। वृक्षों की जड़,

पत्तियाँ, छाल, फूल आदि व्याधियों के अनुसार तांत्रिक विधि से पहनाकर रोग निवारण किया जाता है।

'तन्त्रं कृत्वा वरणों वारयता इति तृचेनवरणं वृक्षमणिं वधाति ।'

यहाँ वरण (वरना) वृक्ष की मणि पहनाने का उल्लेख है। संहिता में वाईस प्रकार के 'सावयज्ञ' बताये गये हैं। इन यज्ञों को स्वर्गोदयन तन्त्र से अथवा ब्रह्मदेव तंत्र से करने का निर्देश किया गया है।

अथर्ववेद में जो शान्ति पुष्टि कर्म बताये गये हैं, उन सब का विधान तांत्रिक ही है। अथर्ववेद के शान्ति कल्प के 'शं त आपो हैमवतीः' इस मंत्र का भाष्य करते हुए सायणा चार्य ने लिखा है :—

"शं त आप इति सूक्तेन तन्त्रभूतमहाशान्तो नद्यादि समाहृतं जलमभिन्नयेत् ।"

अथात् 'शं त आपः' इस सूक्त से तन्त्रभूतगद्याशान्तिकर्म में सरिता-सरोवरों के जल से अभिमंत्रित करना चाहिये।

इसके बाद सायण लिखता है :—

'तथा तन्त्रं कृत्वा अनेन सूक्तेन गौञ्जान पाशान् सम्पात्याभि मन्त्रं सेनाक्रमेसुवपत्ति तन्त्रं च ।'

अथर्ववेद में शान्ति, पुष्टि, अभिचार, अद्भुत आदि से संबंधित जितने कर्म बताये गये हैं, उन सब की अनुष्ठान पद्धति तांत्रिक है। जिस प्रकार तंत्रशास्त्र में यंत्र और मंत्र का विशद वर्णन है, उसी प्रकार वेदों में भी मंत्रों का उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार तंत्रशास्त्र के मन्त्र सर्वार्थ साधक होते हैं, उसी प्रकार वेदों के मंत्र भी सर्वमिद्दिदायक होते हैं। तंत्र और वेद दोनों के मंत्रों के अधिष्ठातृ देवता होते हैं। मंत्रों में बीजरूप से मिथ्यत तंत्र, संस्कृति ब्राह्मण ग्रंथों, कल्पमूर्त्रों से अंकुरित होकर पुराणों और तंत्र ग्रंथों तक पहुँचकर शाखाओं, प्रशाखाओं, फलों पुष्पों से सम्पन्न होकर महाविटप बन गई।

जब मंत्रों के अधिष्ठातृ देवताओं की स्थापना हो गई, तो देवता के गुण, स्वरूप आदि का चिन्तन कर मंत्रों के उद्धार का क्रम प्रारंभ हुआ। फिर उन मंत्रों को यंत्रों में संयोजित किया गया। तदनन्तर मंत्रों के अधिष्ठातृ देवताओं के ध्यान और उपासना के पाँच अंग—पठन, पद्धति, कवच, नामसहस्र और स्तोत्र प्रदर्शित किए गए। जिन ग्रंथों में इस प्रकार के चिन्तन को स्थान दिया गया, उन्हें 'तंत्र ग्रंथ' या 'तंत्र शास्त्र' कहा गया। वाराही संहिता के अनुसार जिन ग्रंथों में सृष्टि, प्रलय, देवताचर्चन, शवसाधना, पुरश्चरण, पद्कर्म, साधना तथा ध्यान योग—ये सात लक्षण

हों, वे आगमशास्त्र हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रधान कर्मों के अनुसार हों, ये आगमशास्त्र हैं। सतोगुण प्रधान आगम 'तंत्र' कहे जाते हैं। आगमशास्त्र तीन भागों में विभक्त हुए। सतोगुण प्रधान आगम 'तंत्र' कहलाते रजोगुण प्रधान आगम को 'यामल' और तमोगुण प्रधान आगम 'डामर' कहलाते हैं। पश्चवत्त णिन के मुख से निःसृत होने के कारण आगमों में पाँच आम्नाय माने हैं। पूर्वमिनाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वमिनाय। यह है—पूर्वमिनाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वमिनाय। इन पाँचों आम्नायों का विशद वर्णन 'कुलार्टक' तंत्र में निलिपा है। पूर्वमिनाय रूप है। इसे पाँचों आम्नायों का कहा जाता है। दक्षिणाम्नाय स्थिति रूप है, इसे भक्तियोग रूप है। इसे मंत्रयोग भी कहा जाता है। उत्तराम्नाय संहार रूप है, इसे कर्मयोग भी कहा जाता है। भी कहा जाता है। पश्चिमाम्नाय संहार रूप है, इसे ज्ञानयोग भी कहा जाता है। ऊर्ध्वमिनाय अनुग्रह रूप है। इसे ज्ञानयोग भी कहा जाता है।

तान्त्रिक विकास के इस क्राम में तंत्रणाश्र का विभाजन भौगोलिक दृष्टि से भी किया गया। यह भूमि विभाजन भारत भूमि की सीमा के अन्तर्गत तीन खण्डों में हुआ है। विन्ध्यपर्वत से चटगाँव तक का पूर्वोत्तर क्षेत्र 'विष्णुक्रान्त', उसका उत्तर पश्चिमी भाग 'रथक्रान्त', विन्ध्य से दक्षिण समुद्रपर्यन्त भूभाग 'अश्वक्रान्त' कहा गया है। ये तीनों क्रान्त जिस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग स्थापित हुए, उसी प्रकार आगमिक दृष्टि से तीनों क्रान्तों के लिए चौसठ-चौसठ तंत्र भी अलग-अलग निर्दिष्ट हैं। तंत्राभिधान में उन चौसठ तंत्रों के नाम गिनाये गये हैं, किन्तु अनेक तंत्र अब उपलब्ध नहीं हैं, केवल नाम शेष हैं। जिस क्रान्त के लिए जो-जो तंत्र निर्धारित किये गये हैं, वह निर्धारिण देश, काल का ध्यान रखकर हुआ है। जिस क्रान्त के लिए जो तंत्र निर्धारित है, उस क्रान्त में उस तंत्र की साधना करने से जीव सिद्धि प्राप्त होती है।

क्रान्त वर्य का एक प्रयोजन शात्रों की चक्रपूजा से भी है। शात्र लोग चक्रपूजा के निमित्त जो यन्त्र बनाते हैं, उस यन्त्र में तीनों क्रान्तों की स्थापना करके उनकी पूजा करते हैं। यन्त्र में तीनों क्रान्तों की स्थिति का निर्धारण सारतत्त्वदर्शन में बताया गया है कि—

भूपूरं चाश्वक्रान्तं च, दल चक्रं रथस्मृतम् ।
यंत्रकेन्द्रं त्रिकोणञ्च, विष्णुक्रान्तमध्योच्यते ॥

यहाँ यह लिख देना अनुचित न होगा कि आगमशास्त्रों ने जो भौगोलिक विभाजन विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त से किया है, उनकी सीमाएँ अधिकांश टीकाकारों ने गलत निर्धारित की हैं। इसे हम भारतीय ज्योतिष और खगोल विज्ञान से समझने की चेष्टा करें, तो भूल पकड़ में आ जाती है।

क्रान्त (ट्रॉपिकल जोन), कक्करेखा (ट्रॉपिक आफ कैसर) और मकररेखा (ट्रॉपिक आफ कैप्रीकान्त) इन तीनों के मध्य भूमध्य रेखा है। कक्करेखा करांची के पास

से दिल्ली के दक्षिण से जाती है और मकाररेखा मेडेगास्कर के दक्षिण में है। भारतवर्ष का समस्त भूभाग भूमध्यरेखा के ऊपर है। इस विवेचन को मीलतंत्र के निम्नांकित कथन से मिलाने पर स्पष्ट बोध हो जाता है—

रेवाया: दक्षिणेभागे, हयक्रान्तं महावनं ।
याम्ये देवनदीतीरे, भागीरथरथं स्मृतं ॥
ऊच्चे विष्णुपदी भागे, विष्णुक्रान्तं तपोवनम् ।
मर्यादा स्कन्ददेवस्य, पूजा चक्रेविधीयते ॥

तन्त्र में भाव और आचार

तन्त्र में भाव बहुत ही गुरुत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द है। कौलावली तन्त्र के ग्यारहवें उल्लास में बताया गया है कि 'भावपदार्थ' मन का धर्म विशेष है। वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल दिङ्‌मात्र होता है। जिस तरह गुड़ की मिठास जिहा से जानी जाती है, वाणी से नहीं; उसी प्रकार भाव का विभाव केवल मन से ही अनुभव करने योग्य होता है, शब्दों द्वारा नहीं।^१

महाभाव उपाधि भेद से, विषय भेद से अनेक प्रकार का होता है। भाव अपनी प्रगाढ़ावस्था में जब होता है, तो उससे उत्पन्न समस्त भेद महाभाव में विलीन हो जाते हैं। वस्तुतः भाव ही आनन्दघन-रान्दोह प्रभु है। भाव ही प्रकृति का रूप धारण करता है, भाव ही रसरूपी आत्मा है। भाव ही परम महान् है।^२

तंत्र-मन्त्र की सिद्धि में भाव ही कारण होता है। लाल्हों, करों की भक्ष्य में जप किया जाए, होग किया जाए; शारीरिक कष्ट भोग कर साधना की जाए, किन्तु बिना भाव के तंत्र-मन्त्र की सिद्धि फलप्रद नहीं होती है।^३ ज्ञान की विशेष अवस्था ही

१. भावस्तु मानसोर्ध्मः स हि शब्दः कथं भवेत् ।

तस्मात् भावो न वक्तव्यो दिङ्‌मात्रं समुद्घृतम् ॥

यथेष्वगुडमाधुर्यं जिह्या ज्ञायते सदा ।

तस्माद् भावो विभावस्तु मनसा परिभाव्यते ॥

२. एक एव महाभावो नानात्वं भजते यतः ।

उपाधिभेदभावेन भावभेदो लग्निष्यति ॥

आनन्दघनमन्दोहः प्रभुः प्रकृतिरूपधूक् ।

रसरूपः स एवात्मा स प्रभुः परमोमहान् ॥

३. बहुजपात् तथा होमात् कायवलेशात् विस्तरैः ।

न भावे न बिना चेव तंत्र-मंत्राः कलप्रदाः ॥

आस्थादान कर लेता है, वह और पुरुष की भाँति अज्ञान रज्जु को तोड़ने में सकल होता है और अमृत सारोदर का सम्भास करने के लिये तत्पर हो जाता है। तब वह और भाव सम्पन्न साधक बन जाता है। वीरभाव सम्पन्न साधक की मनोवृत्ति रजोगुण प्रभाव होती है। वह समस्त जागतिक पदार्थों को शिव और शक्ति की विभूति मानकर भारण करने का प्रयत्न करता है। इस वीरभाव की अवस्था में साधक द्वैतभावना से ऊपर अद्वैतभावना की ओर बढ़ता है।

दिव्यभाव- यह साधक वीरभाव से परिपूर्ण होकर द्वैतभाव को निरस्त कर अपने उपास्य देवता से तादात्म्य भाव रखने में समर्थ हो जाता है अद्वैतानन्द अमृत पान निरत बहामय हो जाता है, तब वह दिव्य कहा जाने लगता है। उसकी मानसिक अवस्था पूर्णतया सात्त्विक हो जाती है। उसमें दिव्यभाव का उदय हो जाता है। दिव्यभाव साधक बहुजानी परमहंस पद प्राप्त करता है।

इन तीनों भावों से आविष्ट तंत्र-साधकों के सात आचार होते हैं—

सात आचार

वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कुलाचार। ये आचार क्रमशः एक के बारे एक उत्तम माने गये हैं। अन्तिम सातवीं प्रक्रिया वाचार सर्वोत्तम आचार माना जाता है।

प्रारम्भ से चार क्रमशः वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार और दक्षिणाचार उत्तम पशुभाव साधक से संबंध रखते हैं। और साधक से वामाचार और सिद्धान्ताचार सम्बद्ध होते हैं और दिव्यभाव साधक का संबंध कुलाचार से होता है। सागतन हिन्दू जाति के धर्म-ज्ञान, भक्ति, देव-देवी, शक्ति, साधना साध्य और जाति आचारमूलक मानी गई है। तंत्रशास्त्रों में सातों आचारों के स्वरूपों का विशेष वर्णन मिलता है।

समयाचार तंत्र में वेदाचार— वैदिक विधि से संकल्पपूर्वक देवार्चन करना, मय, मांस का सेवन न करना, बहान्तर्घ पालन करना, लोभ मोह से दूर रहना, एकान्त-शान्त पुण्यक्षेत्र में रहकर शुद्धभाव से ध्यान, साधना में निरत रहना काम, क्रोध रहित रहना, विकाल सम्प्या और अप करना, रात में गाला और मंत्र का स्पर्श न करना और गुह किसी न करना—यही वेदाचार है।

नित्यतंत्र में वैष्णवाचार— वेदाचार की ही भाँति संयम-नियम का पालन करते हुए ब्रह्मचर्यस्त रहना, हिंसा, विन्दा, कुटिलता से दूर रहना। भगवान् विष्णु की अर्चना करना और सभी कर्मों को उन्हें समर्पित कर देना तथा सम्पूर्ण जगत् को विष्णुमय समझना—वैष्णवाचार है।

नित्यतंत्र में गैराचार—वेदाचार की मौति शिव और भक्ति की आराधना करना शैवाचार है। इसमें एक विजेपता यह है कि बलिदान भी किया जाता है।

नित्यतंत्र में दक्षिणाचार—दक्षिणा मूर्ति का आश्रयण करने से इसे दक्षिणाचार कहा गया है। यह आचार वीरभाव और दिव्यभाव सम्बन्ध साधकों के लिये प्रबोधित किया गया है। भगवती परमेश्वरी की पूजा वेदाचार क्रम से की जाती है। विज्ञादशमी की रात में इस आचार को ग्रहण कर अनन्यधी होकर मूलमंत्र का जप किया जाता है।

भावरहस्य में वामाचार—वीरभाव में स्थित साधक के लिये दक्षिणाचार और वामाचार दोनों विधियों से साधना का विधान है। स्वधर्म निरत साधक पंच तत्त्वों (पंच मकारों) से भगवती पर देवता की अर्चना करे। अष्टपाणी से रहित साधक साक्षात् शिव बनकर परम प्रकृति भगवती शक्ति की आराधना करे। गदा तन-मन से पवित्र रहकर महामंत्र की साधना करे, वीरभाव से दिव्यभाव में प्रविष्ट होने पर देवता मानकर मृद्घमतत्त्व की भावना से मानसिक पूजा करे।

भावरहस्य में मिद्दान्ताचार—शम, दम युक्त होकर योगयुक्त साधक, अपने में परमात्मा भाव रखकर, योगभाव से जब साधना करता है तो उसकी वह साधना-पद्धति मिद्दान्ताचार कहलाती है।

भावरहस्य में कुलाचार—जिस प्रकार शिशु सभी कर्मों को भूलाकर माता के स्तनों का पान करता है, उसी प्रकार साधक जानमार्ग में प्रविष्ट होकर सतोगुण से समन्वित होकर, आचार विहीन होने पर भी ब्रह्मभाव में निरत रहता है, तब पूर्णांनंद परायण की वह साधना-पद्धति कीलाचार कहलाती है।

कुल, कौल, कीलाचार का रहस्य—कीलाचन दीपिका में कोल रहस्य को अत्यन्त गोपनीय बताया गया है। यह शास्त्रवी विद्या कुलवधु के समान छिपी रहती है। श्यामा रहस्य में कौल का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि “अन्दर से शाक्त, बाहर से शैव और सभा-समाज में वैष्णव की मौति आचरण करने वाला नाना वेषधारी साधक ‘कौल’ है।”

भाव चूडामणि में कौल का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि “कीचड़ और चन्दन में, पुत्र और शशु में, एमणान और देवगृह में, कंचन और कंकड़ में जो समान भाव रखता है, वह कौल है।”

तन्त्रशास्त्र की भाषा सांकेतिक होने के कारण सर्वसाधारण के लिये उसका वर्तबोध दुर्लभ होता है। वस्तुतः ‘कूल’ शब्द का अर्थ शरीर स्थित पट्टचकों में से एक

चक्र मूलाधार है। कुल में से 'कु' शब्द पृथिवी तत्त्व का बोधक है। पृथिवी तत्त्व में लोन होना 'कुल' है। कुल शब्द ही आपार मूल चक्र है। कुल को शिकोग्य या योनि समझना चाहिये। वह योनि ही मातृका है और वर्णात्मिका परावान् अधिष्ठित शक्ति—मातृयोनि है। यह शब्द पारिभाषिक है। जो साधक इस मातृयोनि से कुण्डलिनी शक्ति को ऊपर मणिपूर चक्र से उठाता हुआ उत्तरोत्तर सहस्रार चक्र तक उठाकर प्रत्येक चक्र में कुण्डलिनी के साथ जीवात्मा की सामरसता स्थापित कर आनन्द का उपभोग करता है, वही साधक कौल है और उसकी पद्धति कौलाचार है।

तंत्रशास्त्र के एक समुदाय में वामाचार को ही कुलाचार कहा जाता है। वाममार्गी अपनी बाह्य पूजा में पंच तत्त्व—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का प्रयोग करते हैं। वे इस प्रकार लौकिक एवं स्थूल पूजा द्रव्य अपने इष्टदेव को समर्पित कर परम अमृत पंद पाने का विश्वास रखते हैं। देवी भागवत में इस प्रकार के कुलाचार को वेद विरुद्ध मानकर द्विजातियों के लिये उसका निरोध किया गया है :—

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजोभवेत् ।

वेदाधिकार हीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ॥

कौलमिअपथौ हेयौ नित्यं गौरि द्विजातिभिः ।

समयाचार और कौलाचार में भेद—निगमागम द्वारा निःसृत भारतीय साधना और संस्कृति की महती विशेषता यह है कि जन-जन की भिन्न-भिन्न रुचियों और प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए हर व्यक्ति की रुचि के अनुसार श्रेय और प्रेय प्राप्त करने वाली अनेक रूप साधना पद्धतियाँ आविष्कृत की गई हैं। तंत्रशास्त्र में उन विभिन्न पद्धतियों को 'आचार' कहा गया है। जानार्दन तंत्र में शक्ति की साधना करने वाले साधकों के लिये कुलाचार, मिथ्राचार और समयाचार तीन आचार बताये गये हैं। यहाँ पर समय शब्द की तात्त्विक व्याख्या कर देनी आवश्यक है। 'समय' शब्द अनेकार्थवाची है। लनिता सहस्रनाम भाष्य में श्री भास्कराचार्य ने समयाचार का व्याख्या में लिखा है :—

"दहराकाश में चक्र-भावना से जो पूजा की जाती है वह 'समय पद वाच्य' है। समयाचार का प्रतिपादन वशिष्ठ, शुक, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार द्वारा विरचित 'पञ्चशुभागम संहिता' ग्रंथों में किया गया है। सर्वप्रथम 'समय' यह अभिधान इन्हीं ग्रंथों में प्रयुक्त हुआ है। इसका पर्यायवाची 'साम्य' शब्द भी है। तदनुसार शक्ति और शिव का साम्य ही 'समय' है। तात्पर्य यह कि 'समया' श्री भगवती हैं और 'समयः' श्री शिव हैं।

साम्य के पाँच भेद—(१) अधिष्ठान—चक्रादि की पूजा, पूजाधिवाच्य;

(२) अनुष्ठान—स्तुष्टि आदि कार्य; (३) अवस्थान—हृत्यादि क्रियाएँ; (४) नामसाम्य—मैरव आदि और (५) रूपसाम्य—आरुणि आदि।

भावेष संदकार करते समय शरीर के अन्तर्गत जब षट्चक्रों का अनुसन्धान किया जाता है, तो मूलाधार से षट्चक्रों का भेदन कर कुण्डलिनी को जब सहत्रदल कमल तक पहुँचाकर पुनः मूलाधार चक्र में स्थापित किया जाता है तो उस क्रिया को 'समयपद' कहा जाता है। 'लितात्रिशति तंत्र' में जिस सनकादिमुनिध्येय का उल्लेख है, उससे समयाचार ही गृहीत होता है। "कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्पर सेविता" की व्याख्या में भास्कराचार्य ने यह आशय व्यक्त किया है—"श्रीविद्या की उपासना में समयाचार, कौलाचार, मिश्राचार तीन आचार मान्य है। वशिष्ठ शुक्र आदि द्वारा प्रतिपाद्य शुभागम में बताया गया है कि 'वैदिक मार्गनुसारी जो आचार है, वही समयाचार है और चन्द्रकुलादि अष्टतंत्रों में प्रतिपादित आचार मिश्राचार है।'

'समय' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'समयाचार' नाम का एक तन्त्र ग्रंथ है, जिसमें पूजा-भवेत की ही 'समय' कहा गया है। 'समय' के अनेकानेदः अर्थों में से पञ्चशुभागम में जो अर्थ बताया गया है, वह आचार प्रधान होने के कारण आचारों द्वारा गृहीत हुआ है। सनकादि मुनियों द्वारा उपदिष्ट 'पञ्चशुभागम' अनुपलब्ध है, केवल उसके उद्धरण यत्र-तत्र मिलते हैं। सौन्दर्य लहरी की टीका में लक्ष्मीधर ने पञ्चशुभागम के अनेक प्रमाण उद्धृत किये हैं। इस समय लक्ष्मीधरी टीका ही समयाचार का आधार बनी हुई है। वेदान्तसूत्र के प्रथम अध्याय के शाकभाष्य में समयाचार का जो निरूपण किया गया है, वह लक्ष्मीधरी टीका पर ही आधारित है। श्री शंकराचार्य द्वारा विरचित 'सौन्दर्यलहरी' श्री गोडपादाचार्य द्वारा रचित 'सुभगोदय' नाम के ग्रंथ पर आधारित है। उस सम्प्रदाय से दीक्षित श्री लक्ष्मीधर ने सौन्दर्य लहरी के आठवें श्लोक की टीका में समयाचार का विवेचन विशद रूप से किया है।

श्री वर्ण वा पूजन वाह्यकाश और दहशकाश भेद से दो प्रकार का होता है। भोजपत्र या भवर्गपत्र में यंत्र बनाकर उस पर आवरण सहित परदेवता का यजन वाह्यकाश पद से गृहीत है। यही कौलाचार है। हृत्कमल में चक्रपूजा ही समयाचार है। वह सहस्र दल में विशेष रूप से होता है। विभिन्न कामनाएँ रखकर साधकगण अन्य चक्रों में भी समयाचार का अवलं बनकर पूजन करते हैं। 'क' से लेकर 'ठ' अक्षर पर्यन्त युक्त हृदय कमल में समाराधिता श्री सुन्दरी अपने भक्तों के सभी अभीष्ट पूर्ण करती है। इस पूजन पद्धति में होम और तर्पण का भी विधान है। हृदयाकाश की पूजा से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

कौलाचार मत में श्री चक्र के अन्तर्गत विकोण के मध्य में स्थित चिन्दू में

पराशक्ति का पूजन होता है। यही 'पूर्व कौलाचार' है और उत्तर कौलाचार मत के अनुयायी प्रत्यक्ष सुन्दरी शवित की योनि-पूजा करते हैं। इस प्रकार श्रीचक्रयजन और प्रत्यक्ष सुन्दरी पूजन भेद से कौल पूजा दो प्रकार की होती है।

वाममार्ग : दक्षिण मार्ग

आधार चक्र के बाह्य और आभ्यन्तर स्थित कुलकण्डलिनी का समाराधन 'मिश्र कौलपूजन' है। यहाँ पर कौल शब्द रुढ़ है। मिश्र कौलपूजकों द्वारा पूजित भगवती भी 'कौलिनी' कहलाती है। इस पूजन में पञ्च मकार (मध्य, मांस, मत्स्य, मैथुन, मुद्रा) को प्रत्यक्ष रूप में ग्रहण किया जाता है और समयाचार पूजन पद्धति में पञ्च मकारों को मानसिक रूप से ग्रहण किया जाता है। कौलमत में मध्य, मांस, मैथुन आदि को भौतिक रूप में ग्रहण किया जाता है। किन्तु समयाचार मत में मध्य से मदिरा का ग्रहण न कर सहस्र दल कमल से निर्गत अमृत बिन्दु माना गया है, उसी का पान मध्यपान है। कौलमत की भाँति पशु का बध कर उसका मांस समय मत में नहीं स्वीकार है। वहाँ पशु से तात्पर्य काम, क्रोध आदि लिया जाता है और इन पशुओं को ज्ञान की तलवार से ब्रांध कर उनका मांस भक्षण किया जाता है। समय मत से इन्द्रियों का निरोध मत्स्य है, आशा, वृष्णा आदि मुद्राएँ हैं। मन और सुषुप्त्या का मिलन ही मैथुन है।

दक्षिणमार्ग में पञ्च मकार का स्वरूप इस प्रकार स्वीकृत है—मनन, मंत्र, मन, मौन और मुद्रा। चाहे समयाचार हो या वामाचार अथवा दक्षिणाचार—सभी मार्गों में पञ्च मकार स्वीकार किया गया है और पञ्च मकारों के लक्षण, स्वरूप एवं उनकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से की गई है। कुछ भी हो, पराशक्ति की पूजा में पञ्च मकार अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और साधक जिस मार्ग का अवलंबन कर महाशवित का पूजन करता है, वह सप्तलता, सिद्धि प्राप्त करता है।

पञ्च मकार पूजा सर्वथा गोपनीय ढंग से की जाती है। कुछ विद्वान् पञ्च मकार पूजन को वेद बाह्य मानकर उसकी निन्दा करते हैं। श्री लक्ष्मीधर ने भी सौन्दर्यलहरी की टीका में पञ्च मकार के मध्य, मांस आदि की अत्यधिक आलोचना की है। कौलों के पञ्च मकार की यह निन्दा बहुत पुरानी है। कृग्वेद में भी इसके संकेत मिलते हैं:—

न यातव इन्द्रजुर्जुसर्नो न वन्ना शविष्ठवेद्याभिः सशर्धदर्थो ।
विषुणस्य जन्तोर्मा शिष्नदेवा अपितु ऋतं नः ॥

(कृग्वेद ५-३-३५)

इस मन्त्र में शिष्णदेव यह पद कीलाचार को संकेतित करता है। शंख और वैष्णवों के आपसी कलह में यही शिष्णदेव ही बीज रूप से विद्यमान है।

पञ्च मकार के लौकिक द्रव्यों द्वारा (मद्य-मांस, मैथुन, मत्स्य) पूजन करने वालों का तर्क है कि "लोगों की आसक्ति मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य में स्वाभाविकतया रहती है। ये वस्तुएँ मानव-जीवन के लिये अपरिहार्य हैं। मद्य, मांस, मैथुन, आदि पाँच मकार हीं संसार बन्धन के हेतु हैं। कामनाएँ, इच्छाएँ रजोगुण प्रधान होती हैं, जीव इनसे विमुक्त स्वतन्त्र नहीं होता है। पञ्च मकारों-भोग-वासनाओं का परित्याग सहज साध्य नहीं होता। भगवती महाशक्ति अपने अन्तर्यामी रूप से सभी प्राणियों में निवास करती है। जिस साधक को जो भोग प्रिय होता है, वही भोग उसके इष्ट देवता को भी प्रिय होता है। इसके प्रकरण में गीता का यह श्लोक भी लोग प्रस्तुत किया करते हैं :—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥

सकाम साधना करने वाले साधकों के लिये शाक्त तन्त्रों में यह विधान मिलता है कि 'सकामी साधक अपने प्रिय द्रव्य से ही अपने इष्टदेव का पूजन करें। देव प्रसन्नार्थ आत्मसमर्पण वुद्धि से पूजन में परमाशक्ति विपरीभूत पदार्थों के प्रयोग—मद्य, मैथुन, पशुबलि आदि से कोई दोष या पाप नहीं होता है। इस प्रकार के पूजन से साधक आत्म-संयमी बनता है। वह भागवती भक्ति प्राप्त करता है और अनवरत भगवत्-स्कुरण से वाह्य ज्ञान शून्य होकर वह साधक शिवत्व प्राप्त करता है।'